

आत्मकथा में सत्यता की कसौटी और आत्मनिष्ठता का सवाल

रंजन पाण्डेय

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

आत्मकथा विधा का सौन्दर्यशास्त्र गढ़ते समय जब हम इस विधा के भीतर जाते हैं तब वहाँ लेखक, भोक्ता और वक्ता का परस्पर गुम्फित रूप ऐसा है कि चारों ओर से तीनों अपनी ही सीमाओं में घिरकर रचना करने का प्रयास करते हैं। आत्मकथा का नायक समय का प्रवक्ता और सर्जक बनने का साहस लिए जब कलम उठाता है तो निजी जीवन सत्यों और संबंधों के संश्लिष्ट ताने-बाने को बीधने वाली निस्संग दृष्टि उसका साथ नहीं दे पाती, विधा का सौन्दर्यशास्त्र यहीं पर आकर जटिल हो जाता है, लेखक, पाठक दोनों के लिए। आखिर क्यों बीधती नजर से अपने आर-पार देखना इतना दुरुह हो जाता है? आखिर क्यों अपने बीते समय की उपलब्धियों, निष्पत्तियों तथा जीवन दर्शन व शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अनुभवों, अपने फैसलों की निर्मम आलोचना कठिन हो जाती है? यहीं पर सत्यता की कसौटी और आत्मनिष्ठता का द्वन्द्व उभरकर सामने आता है। अपने आप को स्वीकारने, पहचानने और जानने की आलोचकीय प्रक्रिया में एक निष्कपट ईमानदारी और निर्भीकता की जो जरूरत होती है, वह आत्ममुग्धता की मानवीय प्रवृत्ति के आगे अपूर्ण रह जाती है।

सत्यता की कसौटी और आत्मनिष्ठता के सवाल पर आत्मकथा लेखन एक ऐसे कठिन और नाजुक संतुलन की मांग करता है, जहाँ रचनाकार नायक के रूप में रचना का विषय बनता है और इसके बाद संतुलित रचनात्मक व्यवहार कर पाना किसी भी रचनाकार के लिए एक कसौटी हो सकती है क्योंकि स्वयं को रचना का विषय बनाने के प्रलोभन के परिणामस्वरूप रचनात्मक दायित्व से स्थलन बहुत आसानी से संभव है। यह स्थलन घटना और रचना के अंतराल और वास्तविक और रचित के अंतर का कारण बनता है। यह स्थलन आत्मगोपन के कारण शायद उतना नहीं होता जितना आत्म गरिमा और आत्म सम्मान की रक्षा से होता है।

मैनेजर पाण्डेय आत्मकथा के संदर्भ में लिखते हैं कि— “अच्छी आत्मकथा लेखक की आत्मा का आईना होती है। सेनेका ने कहा था कि आईने का आविष्कार इसलिए हुआ था कि मनुष्य स्वयं को जान सके, लेकिन यह भी सच है कि आईना अगर एक ओर खुद को जानने में मनुष्य की मदद करता है तो वह कभी-कभी आत्ममुग्धता भी पैदा करता है, जैसा कि नार्सिसस के साथ हुआ। आत्मकथा में ये दोनों स्थितियाँ मिलती हैं।”¹ आत्मकथा सच और सच का भ्रम दोनों संभावनाएँ समाहित करती है। कभी-कभी दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब वही दिखता है जो व्यक्ति स्वयं देखना चाहता है। कभी व्यक्ति उन गुणों को देखता है जो समाज उनमें देखता है। जैसे गोरा होना और कभी वह उन गुणों या दोषों को देखता है जो वह स्वयं देख पाता है। मैनेजर पाण्डेय जिस ‘आत्मा का आईना’ की बात करते हैं, वह ‘आत्मा का आईना’ एक ऐसा सच है जो मोहग्रस्त होता है क्योंकि वहाँ बचाव पक्ष का सच साबित होता है। यथासंभव संतुलित रहने की घोषणा करने के बावजूद आत्मकथाकार आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण से पूर्णतया बच

नहीं पाता। इसके बावजूद कुछ आत्मकथाएँ तटस्थ रही हैं। मैनेजर पाण्डेय मानते हैं कि, “हिंदी में अगर उग्र की आत्मकथा ‘अपनी खबर’ में आइनेदारी है तो बच्चन की आत्मकथा में आत्म-मुग्धता है।”²

आत्मकथाओं में लेखकों के जीवन वृत्त, कर्म का संसार, उनके अनुभव अलग-अलग होते हैं लेकिन आत्मकथाएँ एक ‘समान’ कसौटी की माँग करती हैं। यह सच की कसौटी है। पाठक और आलोचक के लिए हमेशा यह आकर्षण और कौतूहल का विषय है कि आत्मकथाकार के नायक का सच क्या है? उस सच को लेखक कहाँ तक बयान कर पाया है, साथ ही उस सच की सीमा क्या है? सच की अपेक्षाएँ बहुत सूक्ष्म होती हैं। लेखकीय संवेदनाओं को उनके प्रति सजग होना पड़ता है, यह सजगता निजी समझदारी और अंतरात्मा की आवाज से आत्मसात् की जाती है। यह आत्मसातीकरण ही आत्मकथा को श्रेष्ठ बनाती है। सच, उसके प्रति लेखकीय संवेदना की सजगता और लेखक की निजी समझदारी आदि का अन्तिम फैसला पाठक को करना होता है। इसलिए सच अपने आप में सच तो हो ही साथ ही वह पाठक को सच प्रतीत होना चाहिए।

आत्मकथा विधा के माध्यम से लेखक कथा कहने के क्रम में पाठकों को अपने आत्म के नितांत निजी जीवन संसार, उसके अनुभव साझा करने के लिए आमंत्रित करता है। यहाँ एक प्रमुख समस्या यह है लेखक जिस सच का बयान कर रहा है, जरूरी नहीं कि पाठक की दृष्टि से भी वह सच हो, वह उसे माने ही। संत अगस्ताइन इस समस्या को लेकर सजग रहते हैं और लिखते हैं कि, “वे जब मुझसे अपने बारे में सुनते हैं तो यह कैसे मानेंगे या जानेंगे कि मैं सच कह रहा हूँ; क्योंकि एक मनुष्य के मन में क्या चल रहा है यह उसकी चेतना के अलावा कौन जान सकता है।”³ इस स्थिति में आत्मकथा का लेखक अपने सत्य को सत्य साबित करने के लिए शपथ लेता है या इसी प्रकार की कुछ घोषणाएँ करता है। रूसो अपनी आत्मकथा के सच को प्रमाणिक सिद्ध करने के लिए घोषणा करते हैं— “मैंने उसे बेशक सत्य माना है जिसे मैंने सत्य समझा, लेकिन उसे सत्य बनाने की कोशिश नहीं की जो मैं जानता था कि झूठ है, मैंने अपने-आपको वैसा ही दिखाया है, जैसा कि मैं था... ओ शाश्वत शक्ति! मैंने अपने अन्दर के ‘मैं’ को बिल्कुल उसी रूप में पेश किया है, जिस रूप में तुमने उसे देखा है।”⁴

कुछ आत्मकथाकार उपर्युक्त रास्ते के अतिरिक्त सत्य को सत्यापित करने का जिम्मा पाठक पर छोड़ देते हैं। इस संदर्भ में गांधी अपनी आत्मकथा में सत्य कहने की बात तो करते हैं लेकिन कुछ अलग तरीके से। वे लिखते हैं कि, “मैंने खूब आत्म-निरीक्षण किया है, एक-एक भाव की जाँच की है, उसका पृथक्करण किया है। किन्तु उनमें से निकले हुए परिणाम सबके लिए अन्तिम ही हैं, वे सच हैं अथवा वे सच नहीं हैं, ऐसा दावा मैं कभी करना नहीं चाहता। हाँ, यह दावा मैं अवश्य करता हूँ कि मेरी दृष्टि से ये सच हैं और इस समय तो अन्तिम जैसे ही मालूम होते हैं।”⁵ आगे वह यह कहते हैं कि “मैं चाहता हूँ कि

मेरे लेखों को कोई प्रमाणभूत न समझे। यही मेरी विनती है। मैं तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि उनमें बताये गये प्रयोगों को दृष्टान्तरूप मानकर सब अपने-अपने प्रयोग यथाशक्ति और यथामति करें।⁶

आत्मकथा में सत्य अप्रिय होने पर भी बयान किया जाना चाहिए। जब तक लेखक के भीतर गाँधी का यह भाव कि, “मेरे समान अनेकों का क्षय हो, पर सत्य की जय हो।”⁷ नहीं होगा तब तक आत्मकथाकार अप्रिय सच कहने का साहस नहीं जुटा पाएगा, साथ ही यह अप्रिय सच समाज और समाज के पाठक को स्वीकारना भी पड़ेगा। लूहे को लूहा, अंधे को अंधा कहना भी एक अप्रिय सच का उदाहरण है। आत्मकथा में अप्रिय सच से तात्पर्य उस सच से है जो कष्टप्रद होता है लेकिन उस सच में कल्याण, भलाई या सुधार का उद्देश्य निहित होता है। उदाहरणार्थ दलितों के भीतर ब्राह्मणवाद के सच को उजागर करने वाली दलित आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं।

व्यक्ति का जीवन लाभ-हानि, सुख-दुख, जय-पराजय और जाने कितने अनुभवों का परिणाम होता है। कुछ लोग इनसे दबकर हार स्वीकार लेते हैं तो कुछ शख्सियतें ऐसी हैं जो सब बाधाओं का प्रतिकार करती हुए, अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिए संघर्ष करती हैं। अपने इस संघर्ष को जब आत्मकथा का माध्यम मिलता है तब यही संघर्ष भोगा हुआ सच लिखने की प्रेरणा बन जाता है। दलित और स्त्री आत्मकथाएँ इस प्रक्रिया की बानगी हैं, जहाँ सच अपनी अप्रियता के बावजूद व्यक्त हुआ है।

दोहरा अभिशाप में कौशल्या बैसंत्री सच को उसकी अप्रियता के बावजूद लिखती हैं— “मेरी और देवेन्द्र कुमार में नहीं बनी। देवेन्द्र कुमार सिर्फ अपने ही घेरे रहने वाला आदमी है।... बात-बात पर गाली वह भी गंदी-गंदी और हाथ उठाना। मारता भी था बहुत क्रूर तरीके से।...

देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी।”⁸ लेखिका आत्मकथा की भूमिका में पुनः इस बात को स्वीकार करती हैं “पति ने कभी मेरी कदर ही नहीं की बल्कि रोज-रोज के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट केस करना पड़ा।”⁹

आत्मकथा में सामान्यतः सत्य से पलायन, सत्य के गोपन की प्रवृत्ति भी विद्यमान रहती है। मार्क ट्वेन ने लिखा है कि— “आत्मकथा सर्वाधिक सच्ची किताब होती है; यद्यपि उसमें सच को छुपाने, उससे बचने और उसको आंशिक रूप से ही सामने लाने की कोशिश होती है, फिर भी उसमें पक्तियों के बीच में निष्ठुर सत्य छिपा रहता है, इसलिए लेखक की कोशिश के बावजूद पाठक उसके जीवन के सच को पहचान ही लेता है।”¹⁰ आत्मकथा का सत्य उसकी तथ्यपरकता के बाहर तलाश करने पर पाठक सच और झूठ को फर्क कर पाता है। जब हम आत्मकथा के सत्य का सम्बन्ध शब्दशः यथातथ्यता से लेंगे तब आत्मकथा के सत्य का निर्धारण शायद करना बेहद कठिन होगा क्योंकि आत्मकथा में इस सत्य का आधार स्मृति है जहाँ भूल से छूट जाना क्षम्य है साथ ही लेखक, लेखिका स्वतंत्रतापूर्ण तथ्यों घटनाओं का स्वैच्छिक चयन करने को स्वतन्त्र हैं। इस तरह सही मायनों में आत्मकथा का सत्य उसके आंकड़ों और तथ्यों में नहीं बल्कि उनकी संवेदना, उद्देश्य और रास्तों में है, वह पाठक की संवेदना उद्देश्य से जुड़कर ही सत्यापित होता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार, “भाषा से परे सच का अस्तित्व नहीं है, लेकिन शब्द सच को छिपाने में जितनी मदद करते हैं उससे अधिक सच को खोलने का काम भी करते हैं।”¹¹

आत्मकथा के सत्य के पलायन या गोपन की प्रवृत्ति के साथ यह भी ध्यातव्य है कि आत्मकथा में भूतकाल का हूबहू प्रस्तुतीकरण कठिन है क्योंकि “आत्मकथा में लेखक, कथावाचक और नायक निश्चित तौर पर एक उभयनिष्ठ पहचान साझा करते हैं। यह उभयनिष्ठ पहचान समान हो सकती है लेकिन एकदम एक जैसी

नहीं है।”¹² आत्मकथा लेखन के दौरान लेखक अपनी कहानी में जिस आत्म की रचना करता है वह सम्भव है कि लेखक के भूतकाल का पूर्ण वास्तविक प्रस्तुतीकरण न हो। स्व की संकल्पना इतनी जटिल और बहुआयामी है कि लेखक जब सत्य के साथ उससे जोड़ना चाहता है तो वह अपूर्ण और पक्षपातपूर्ण रह जाती है। इस अपूर्णता का कारण स्मृतियाँ हैं जबकि आत्ममुग्धता और अति आत्म सम्मान की प्रवृत्ति पक्षपात का कारण बनती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आत्मकथा जैसी विधा में लेखक स्वयं की बात अपने आप की सीमा में रहकर कर पाने का अवसर ही नहीं पाता है। लेकिन एक दूसरा प्रश्न यह भी है कि लेखक क्या स्वयं के विषय में सिर्फ तथ्य का प्रस्तुतीकरण करना या उस तथ्य के माध्यम से एक अन्य सत्य तक पाठक को पहुँचाना चाहता है? आत्मकथा का लेखक आत्मकथा में कभी भी एक सत्यापित तथ्य बनकर नहीं आना चाहता क्योंकि यहाँ तथ्य महत्वपूर्ण नहीं है। महत्वपूर्ण है— तथ्य से जुड़ी घटनाओं का अर्थ। क्या यह संभव है कि सिर्फ तथ्य के आधार पर आत्म की कथा कही जा सकती है? सही मायनों में तथ्य कभी भी एक जीवंत, प्रेरणादायी, आकर्षण और द्वन्द्वात्मक आत्म की पुनर्रचना नहीं कर सकते। “एक आत्मकथा विशुद्ध रिकॉर्ड, एक खाता या एक लॉगबुक नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रकार का रिकॉर्ड चाहे कितनी ही बारीकी से क्यों न लिखा गया हो वास्तविक जीवन का कार्टून चित्र खींचने के बराबर होगा।”¹³

आत्मकथा में तथ्य को साहित्यिक मूल्य का हिस्सा मानना एक त्रुटि होगी क्योंकि साहित्य वह कला है जहाँ कलाकार और उसकी अभिव्यक्ति का सम्पर्क सूत्र उसकी भावनाएं है। साहित्य का मूल्य उसकी भावना, उसके विचार में है न कि उसकी तथ्यात्मकता में। इसके बावजूद तथ्य आत्मकथा को आधार देते हैं। लेखक के विषय में सूचना देने वाले ये तथ्य आत्मकथा में रुचि पैदा करते हैं। यह रुचि, कृत्रिमता में बदल जाती है जब तथ्य अधिकता में प्रयोग होते हैं। लेखक आत्मकथा में कलात्मकता को बचाये रखने के लिए तथ्य और भाव और विचार के बीच सन्तुलन के सौन्दर्य को साधने का प्रयास करता है। यह अलग प्रश्न है कि यह तथ्य कितना सत्य है? इसकी व्याख्या सत्य या असत्य हो सकती है।

आत्मकथा में उद्घाटित सत्य वास्तविक यथातथ्यता से अधिक महत्वपूर्ण और संश्लिष्ट है। वास्तविक आत्मकथा एक विशेष सत्य की घोषणा है।¹⁴ लेकिन आत्मकथा में तथ्यों की यथासम्भव सत्य सूचना देना आत्मकथाकार का दायित्व है। आत्मकथा उपन्यास से इस मायने में अन्तर रखती है कि आत्मकथा का लेखक अपने निजी जीवन के तथ्यों का सच्चाई के साथ प्रस्तुतीकरण करने के लिए कटिबद्ध रहता है। पाठक लेखक की बातों पर, तथ्यों पर आसानी से यकीन कर लेता है। सामान्यतः ‘आत्मकथा उपन्यास की भांति व्यक्तिगत मानवीय प्रकृति से संबंधित है पर यह प्रकृति में उपन्यास की भांति नई खोजों के लिए स्वतंत्र नहीं है। इतिहास की भांति यह तथ्यात्मक रूप से सत्य होने की कोशिश करता है, पर यह इतिहास नहीं है, क्योंकि इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह अपने सत्य का कागजी या वस्तुगत प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता है। आत्मकथा का सत्य तथ्य और आत्मकथाकार द्वारा तथ्य में जोड़े गए अर्थ, दोनों हैं।’¹⁵

“सत्य एक अति आत्मनिष्ठ विषय है।”¹⁶ एक व्यक्ति का सत्य दूसरे से अलग है क्योंकि उसके विचार, भाव, संस्कार, परम्परा अलग हैं। आत्मकथाकार की स्व के विषय में, समाज-मूल्य के विषय में, जो सत्य की समझ होगी वह पाठक से सर्वांगसम हो जरूरी नहीं है। साथ ही एक समय का सत्य दूसरे समय के जितना ही सत्य और महत्वपूर्ण हो— यह भी जरूरी नहीं। इसके अतिरिक्त एक ही समय की एक ही घटना के साझेदार दो व्यक्तियों के सत्य परस्पर विलोम (आंशिक या पूर्ण) होते हैं। इसका कारण है कि व्यक्ति अपने अलग सरोकारों के कारण

घटना में अलग-अलग भूमिका निभाते हैं और उनके परिप्रेक्ष्य बँट जाते हैं। एक के परिप्रेक्ष्य से दूसरा या अन्य सभी और दूसरा या अन्य सभी के संदर्भ से पहला गलत साबित हो जाता है। उदाहरणार्थ राजेन्द्र यादव और मन्नु भण्डारी एक ही समय, स्थान, और संदर्भों में रहते हुए भी एक-दूसरे का अतिक्रमण करती आत्मकथाएँ लिखते हैं जहाँ विचार, भाव, संस्कार, मूल्य के अनुसार एक घटना के दो सत्य हैं। एक का सत्य पूर्ण है दूसरे का अपूर्ण यह पक्षपातपूर्ण निर्णय होगा। दरअसल "कोई भी अपने बारे में पूर्ण सत्य नहीं बता सकता है क्योंकि पूर्ण सत्य लिखने में पूर्ण सत्य को जीने से ज्यादा संघर्ष है।" 17 इसी संदर्भ में 'नारीवाद की हिन्दी आत्मकथा' शीर्षक लेख में अभय कुमार दुबे मिश्री लेखक इहाब हसन का प्रश्न उद्धृत करते हैं— "क्या जीवन कभी शब्दों में अनुदित हो सकेगा? क्या एक जीवन, जिसका अन्त नहीं हुआ है, ...कभी खुद को पूरी तरह समझ सकेगा?" 18

कुछ आत्मकथाकार जीवन और कला के बीच पर्याप्त दूरी को स्वीकार करते हैं, जहाँ जीवन की कटु अनुभूति को कला के माध्यम से बयान करना कठिन होता है। जीवन और शब्द इनकी दृष्टि में सर्वथा भिन्न इयत्ता धरण करते हैं। जहाँ रचनात्मक ईमानदारी और स्वाध्याय भी जीवन की छाया के रूप में ही शब्दों का चयन कर उनमें अर्थ भर पाते हैं। ये शब्द और उनके अर्थ जीवन यथार्थ से जुड़े तो रहते हैं लेकिन दूर से। आत्मकथाकार के रूप में हरिवंश राय बच्चन साहित्य मात्र को "जीवन को पकड़ने का एक बहुत निर्बल और निष्फल प्रयास बताते हैं। वे लिखते हैं कि— "जीवन के सत्य और शब्द के सत्य में कोई साम्य नहीं है, और जीवन की दृष्टि के शब्दों का सत्य एक बहुत बड़ा, लेकिन बहुत सुन्दर झूठ है। जो चीज रक्त से लिखी जाती है, वह स्याही से लिखी जा सकती है? जो काम हमारी शिराएँ, हमारी मांस-पेशियाँ करती हैं, क्या हम उसे जड़ लेखनी से करा सकते हैं? हृदय और मस्तिष्क के फलक पर जो मर्म-स्पर्शी और मर्मबेधी स्पन्दन होते हैं, क्या उन्हें कोरे कागजों पर फैलाया जा सकता है? नहीं! नहीं! नहीं!" 19

सत्य के भ्रम की बात इस संदर्भ में स्वीकारते हुए बच्चन अपनी पुस्तक को "जीवन का एक बहुत बड़ा झूठ" 20 घोषित करके अपनी ईमानदारी दर्शाते हैं। इसी तरह बर्नार्ड शॉ ने दो टूक शब्दों में कहा है कि "सभी आत्मकथाएँ असत्य हैं।" 21 फ्रायड का मत इसी संदर्भ में यह है कि, "झूठ बोलना इस आत्मकथा की विधा में निहित है।" 22

उपर्युक्त मत को न तो पूर्णतः स्वीकारना सम्भव है और पूर्णतः नकारा भी नहीं जा सकता। लेकिन क्या यह सम्भव है कि जीवन और शब्द के अन्तराल के कारण आत्मकथा झूठ बन जाती है? क्या इतिहासकार भी जब इतिहास लिखता है तो वहाँ विषय का सत्य जीवन के सत्य से दूर नहीं रखता है। उस दशा में हम इतिहास को झूठ तो साबित नहीं करते। आत्मकथा में सत्य का भ्रम जीवन का सबसे बड़ा झूठ में परिणत हो जाता है यह स्वीकार करना एकतरफा होगा। आत्मकथा के भीतर इस प्रश्न का उत्तर हाँ या नहीं में नहीं दिया जा सकता। "एक इतिहासकार भी भूतकाल के वास्तविक सच का निश्चित तौर पर वर्णन नहीं कर सकता है।" 23 तब साहित्यकार से यह उम्मीद कहाँ तक उचित है? लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि आत्मकथाकार होने के कारण साहित्यकार को सारी छूट मिल जाती है।

लेखक घटनाओं का वस्तुनिष्ठ बयान नहीं कर सकता क्योंकि शब्द हमेशा यादों और भावों के पूर्ण वाहक नहीं बन सकते। ई. स्टुअर्ट बेट्स (E. Stuart Bates) महोदय अधिकांश सच्ची आत्मकथाओं में भी कल्पना के तत्व स्वीकार करते हैं। उनका मानना है कि— "आत्मकथा और कल्पना में कोई विभाजक रेखा नहीं है।" 24 इसी संदर्भ में सर्ज डॉब्रोस्की (Serge Doubrosky) की राय है कि— "आत्मकथा की विशेषता कल्पना और सत्य को

बनाना और बिगाड़ना है, जो कि आत्मकथा के भीतर एक उपविभाजन का नेतृत्व करती है जहाँ आत्म के सब प्रकार के कल्पनात्मक विवरण का निपटान होता है।" 25

हालाँकि आत्मकथाकारों की निष्ठा उनकी प्रमाणिकता में होती है। आत्मकथा लेखक बार-बार यह सिद्ध करना चाहता है कि वह सत्य ही लिखता है, क्योंकि वह सत्य लिखना चाहता है। बच्चन अपनी आत्मकथा की शुरुआत इस घोषणा से करते हैं कि—

"मैं कलम पर हाथ रखकर कहता हूँ—
मैं जो कुछ कहूँगा सत्य कहूँगा और
सत्य के अतिरिक्त अगर कुछ कहूँगा
तो फिर ऋत कहूँगा।" 26

गहरे अर्थों में व्यक्ति के जीवन का फलक इतना व्यापक है कि उसे पूर्ण प्रस्तुत करने की संभावना ही नहीं होती है। जीवन की अनगिनत घटनाओं और अनुभवों की एक विस्तृत श्रृंखला में से लेखक अपनी रचनात्मकता का परिचय देते हुए कुछ विशेष का चयन कर एक सुसम्बद्धता का सृजन करता है। उससे जीवन के समस्त पहलुओं के उद्घाटन की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। अपने आत्म की कथा को आकार देने तथा उसके प्रस्तुतीकरण के तरीकों के चुनाव के लिए आत्मकथाकार स्वतंत्र है। वह इस बात के लिए भी स्वतंत्र है कि उसे क्या चुनना है? रूसो अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि— "मैं तथ्यों को छोड़ सकता हूँ या उनका स्थानान्तरण भी कर सकता हूँ। तिथियों से सम्बद्ध कुछ हो सकती हैं, किन्तु जो कुछ मैंने महसूस किया है या जिसके लिए मुझे मेरी भावनाओं ने विवश किया है, उसके अंकन में मैं कतई गलत नहीं हो सकता..." 27

जीवन की विशालता और उसकी विविधता तथा लेखक की रचनात्मक प्रवृत्ति को ध्यान में रखा जाए तो रूसो की उपरोक्त स्वीकारोक्ति सहज ही अपनी औचित्यता सिद्ध करती है। इस चयन और अलगाव की प्रक्रिया में एक प्रश्न उभरता है कि जिस प्रमाणिकता में आत्मकथाकार अपनी निष्ठा व्यक्त करता है या जिस प्रमाणिकता की खोज पाठक करता है, वह कहीं बाधित तो नहीं हो जाती? दरअसल लेखक आत्मकथा में जब चयन और अलगाव में लिप्त रहता है तब उसके पीछे एक रचनाकार की मानवीय दृष्टि काम करती रहती है। यह मानवीय दृष्टि ही प्रमाणिकता का निर्वाह करती है।

आत्मकथा का लेखक अपने अनुभवों के द्वारा स्वयं के विषय का सच चित्रित करता है और उन रास्तों का भी जिनसे अपने को स्पष्ट कर सके। यह चित्रित आत्म और उसकी कथा विरूपण से युक्त होती है और यह विरूपण तथ्यात्मक सत्य में छेड़छाड़ का परिणाम है, लेकिन इसके बावजूद यह आत्मकथा के सौंदर्यशास्त्र को हानि नहीं पहुँचाता। आत्मकथाकार अपने बीते कल और पीछे छूटे आत्म की पुनर्रचना के क्रम में एक जीवन सत्य की प्रस्तुति करने का प्रयास करता है। यह प्रयास सफल हो, असफल हो? इससे आत्मकथाकार की कोशिश अपनी महत्ता नहीं खोती। आत्मकथा का वास्तविक मूल्य इससे प्रभावित नहीं होता। आत्मकथा का लेखक आत्मकथा और सच के बीच सृजनात्मक-कल्पना, मानवीय सृजन की प्रवृत्ति के कारण जिन रास्तों, तरीकों से अपने कल का वर्णन करता है, वे रास्ते उस व्यक्ति का बयान है— "जो वह सोचता है कि वह है।" 28

आत्मकथा व्यक्तिगत आत्म का सार्वजनिक अनावरण है। लिंडा एंडरसन (Linda Anderson) लिखती हैं कि— 'आत्म का लेखा-जोखा और आत्म परावर्तन आत्मकथा के अंदरूनी भाग हैं।' 29 इसे आत्म मंथन भी कहा जा सकता है। प्रथमतः लेखक आत्म मंथन करता है फिर उसका लेखन द्वारा सामाजिक प्रस्तुतीकरण। इस प्रक्रिया में वह सर्वप्रथम नायक के साथ अंगीभूत होता है, फिर लेखक पाठक के साथ और फिर कथा के

अन्य पात्रों के साथ सम्बन्ध जोड़ता है। लेखक अपने बीते कार्यों को पाठक के समक्ष न्यायसंगत सिद्ध करना चाहता है। जीन क्विगली (Jean Quigley) कहते हैं कि 'कथावाचक और नायक सम्बन्धित होकर भी एक जैसे नहीं हैं, वे न्यायीकरण की इस प्रक्रिया में अंगीभूत होते हैं। लेखक कार्य-कारण सम्बन्ध जोड़ लेता है।³⁰ दरअसल लेखक जो आज है वह अपने कल (कथा का नायक) से भिन्न होता है क्योंकि विचार, भाव, संवेदनाएँ, मूल्य, निष्कर्ष आदि समय के साथ परिपक्व होकर बदलते हैं। जीन क्विगली (Jean Quigley) इस कारण का समर्थन करते हुए लिखते हैं कि— 'कथावाचक के पास वह क्षमता है जिससे वह आत्म को दूसरों की भाँति व्यवहृत कर सकता है वहाँ, जहाँ वह आत्म से जुड़े मामलों या आत्म संपादन के अवसरों की रचना कर रहा होता है, क्योंकि वर्तमान आत्म और तब के आत्म के बीच पर्याप्त दूरी होती है।'³¹ अपने पिछले कार्यों की न्यायोचितता के निर्धारण में कथावाचक पाठक से संबंध बनाता है जहाँ वे समान मानदण्डों को अपनाते हैं। कथावाचक आत्मकथा में वही बोलता है, 'जो सदैव नैतिक है, भले ही आख्यान का नायक वैसा न हो।'³² तब यह संबंध ही सामाजिक रूप से सही, गलत, अप्रत्याशित या साधारण कार्यों की उचितता का मूल्यांकन करते हैं। तीसरी प्रक्रिया का सम्पादन कथावाचक कथा के अन्य पात्रों के साथ पारस्परिक क्रिया स्थापित करके करता है। यह वाचक को आत्म के प्रस्तुतीकरण की अनुमति देती है चाहे वह 'एक अनुभवकर्ता हो या कार्यों को पाने वाला, जहाँ आत्म एक वस्तुनिष्ठ स्थिर तत्त्व के रूप में देखा जा सकता है।' कथावाचक घटना का बयान इस प्रकार भी कर सकता है जहाँ वह आत्म को प्रस्तुत करने की जिम्मेदारी से बाहर रहे। यह इस प्रकार वर्णित हो सकता है जैसे कि 'घटना नायक के साथ, दूसरों के व्यवहार के कारण से घटित हुई हो।'³³ इस प्रकार तात्पर्य यह है कि जब लेखक अपने अतीत के विषय में लिखता है तो वह अपनी भावनाओं से मुक्त नहीं हो पाता है। चरित्र के उद्देश्य, भाव, विचार के उद्घाटन के दौरान एक तरीका यह है कि घटना का कुछ इस तरह बयान करे कि जैसे उसका एकमात्र कारण वह खुद है अर्थात् उसने कुछ ऐसा विशिष्ट किया जिससे यह घटना हुई। इस बानगी में लेखक आत्म विकास को प्रदर्शित करता है। वह यह भी कह सकता है कि आज आत्म के साँचे में ढला व्यक्ति बीते कल की घटना का परिणाम है। इन सब अभिव्यक्ति के माध्यमों से आत्मकथा का वास्तविक सच प्रभावित नहीं होता है। आत्मकथा में सत्य की जाँच मानवीय मूल्यों के आधार पर की जानी चाहिए; जहाँ भावनाएँ, प्रगतिशील विचार, तर्क आदि केन्द्रीय भूमिका में होते हैं। इस प्रकार वहाँ तथ्यों की संवेदनशील व्याख्या आत्मकथा में प्रस्तुत अशोभनीय और लज्जाजनक सत्य से अधिक महत्वपूर्ण हैं। लेकिन कुछ आलोचक उन्हीं आत्मकथाओं को विश्वास योग्य मानते हैं, जहाँ तथ्य लज्जाजनक और अशोभनीय है। जॉर्ज ऑरवेल (Jorge Arwel) लिखते हैं कि— 'उन्हीं आत्मकथाओं पर विश्वास किया जाना चाहिए जिसमें कुछ अशोभनीय और लज्जाजनक प्रगट होता है।'³⁴ यहाँ पर यह ध्यान रखना होगा कि हमेशा लज्जाजनक तथ्य और उसकी अभिव्यक्ति परिस्थिति और व्यक्ति सापेक्ष होती है। जाति, लिंग, सामाजिक ओहदा, पारिवारिक संस्कार आदि कभी सत्य को उसकी अशोभनीयता के बावजूद अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं तो कभी प्रबल बाधक भी होते हैं। पाठक की चेतना तथ्यों को उद्घाटित करने और छुपाने की प्रक्रिया में आत्मकथाकार की युग विशेष और परिवेश से निःसृत इसी मनोग्रन्थि और संस्कार को पकड़ लेती है। अतः ऐसा साहसिक जोखिम जो बेशर्म, नंगा, अप्रिय, अशोभनीय सच बयान करे, आत्मकथा की अनिवार्य शर्त नहीं बनाया जा सकता।

आत्मकथा में सत्यता की कसौटी और आत्मनिष्ठता के सवाल पर तमाम तर्कों और बहसों के बीच एक प्रश्न और रह जाता है कि आत्मकथा के सत्य का आधार क्या है? इस प्रश्न का उत्तर डायरी, पत्र आदि से होता हुआ आखिर में स्मृति पर टिकता है। आत्मकथाकार अपनी आत्मकथा की सामग्री के लिए चाहे अनिवार्यतः कहें या चाहे विवशता कहें, अंततः स्मृति पर ही निर्भर है। स्मृति के माध्यम से ही आत्मकथाकार अतीत के गहरे समुद्र से कुछ आकर्षक, प्रेरणादायी तत्व खोजकर लाता है। स्मृति के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण समस्या यह है कि एक ओर यह आत्मकथा के सच का एकमात्र आधार है तो दूसरी ओर एक प्राथमिक कच्ची सामग्री भी है। कभी-कभी आत्मकथाकार इसकी इसी विशेषता के कारण दिग्भ्रमित होते हैं और इसे 'महान कलाकार'³⁵ मानते हैं। दिग्भ्रमित इसलिए क्योंकि यह 'महान कलाकार' (स्मृति) 'तथ्य चयन का अचेतन माध्यम है और स्मृति भयानक रूप से अविश्वसनीय है।'³⁶

रवीन्द्रनाथ टैगोर स्मृति की इस विशेषता और जटिलता को समझकर उसे अज्ञात कलाकार की मौलिक कृति कहते हैं। उनके अनुसार— 'यद्यपि यह मुझे मालूम नहीं कि स्मृति पटल पर कौन-सा चित्रकार चित्र बनाता है, परन्तु वह कोई है अवश्य जो चित्रों में रंग भरता रहता है। वह कोई प्रत्येक घटना का चित्र हू-ब-हू बनाने के लिए हाथ में रंग की कूची लेकर नहीं बैठा है, किन्तु वह अपनी अभिरुचि के अनुसार जिन बातों को लेना चाहता है, उन्हें लेता है और बाकी बातों को छोड़ देता है। वह कितनी ही महत्वपूर्ण बातों को तुच्छ बनाता है, तुच्छ बातों को महत्व देता है, महत्व की बातों को पीछे ढकेलने और तुच्छ बातों को जिनकी ओर कभी किसी का लक्ष्य तक नहीं जा सकता— महत्व देकर आने लाने में उसे कुछ विशेषता नहीं प्रतीत होती। संक्षेपतः यूँ कह सकते हैं कि वह चित्रों में रंग भरता है इतिहास की रचना करने नहीं बैठता।'³⁷

पाश्चात्य आत्मकथा लेखक जी.के. कीसटर्टन (G.K. Chesterton) स्मृति के अंतर्विरोधों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि— 'वस्तुतः जिन चीजों को हम याद करते हैं वे वही चीजें होती हैं जिन्हें हम भूल चुके होते हैं... वस्तुतः घटनाओं की स्मृति अपनी और बिल्कुल अपनी स्मृति हो जाती है न कि उन वस्तुओं की स्मृति जिनको स्मरण करने की कोशिश की जाती है... यह किसी भी चीज को स्मरण करने की सबसे बड़ी समस्या है।'³⁸

इस प्रकार स्मृतियों का कार्य अतीत की घटनाओं की पुनर्सर्जना अपने गुणधर्मों के अनुसार करना है। चूँकि उनका कार्य 'इतिहास की रचना नहीं है', इसलिए वास्तविक घटना और भावना से भिन्नता लाजिमी है। यह नयी सर्जना और आविष्कार की संभावना को पुष्ट करता है।

आत्मकथा में अतीत का स्मरण कभी भी निरपेक्ष और निष्क्रिय सिद्ध नहीं किया जा सकता है। अतीत की स्मृतियाँ स्वभावतः व्यक्ति की उन मानसिक दशाओं, सामाजिक स्थितियों, और जीवन प्रवाह की ओर आकृष्ट होती हैं जिनके प्रति वह जाने अनजाने आसक्त होता है। हम इस मनोवैज्ञानिक सत्य को नकार नहीं सकते कि व्यक्ति स्वभावतः उन्हीं तथ्यों को याद रखता है जिन्हें वह याद रखना चाहता है तथा साथ ही उन तथ्यों को भूल भी जाता है जो उसके लिए अहितकारी सिद्ध हुए हैं। आत्मकथाकार स्वभावतः उन्हीं तथ्यों, गलतियों को स्वीकारता है जो सामाजिक रूप से अनैतिक है या गलत है। वह स्वीकारोक्ति अमूमन कम ही करता है जिससे आत्मकथाकार की छवि धूमिल होती है। सत्यता की कसौटी तय करते समय हमें स्मृतियों की युक्तियुक्ता के साथ आत्मकथाकार की उपरोक्त आत्मनिष्ठता को ध्यान में रखना होगा।

समग्रतः स्मृति का अर्थ एक क्षण, दृश्य, तथ्य है जो कि एक घटना या विषय के रूप में स्थिर कर दी गई है, ताकि उसे विस्मृति से बचाया जा सके। यह कथावाचन की प्रक्रिया में मन

मस्तिष्क में लगातार चलती रहती है और उसके बयान के क्रम में यद्यपि बदल भी सकती है। एक से अधिक अन्तर्विरोधी भावनात्मक विचार जीवन में शामिल होते हैं, जो कि कभी पूर्णतया स्वीकार योग्य भी हो सकते हैं। आत्मकथाकार अपनी आत्मनिष्ठता की प्रवृत्ति के साये में रहकर ही इन सबको पुनर्व्यवस्थित कुछ इस तरह करता है ताकि एक ओर वह इनकी समाप्ति की पुष्टि कर सके तथा दूसरी ओर आत्मकथा में वर्णित सत्य या आंशिक सत्य के रास्ते जीवन सत्य तक स्वयं पहुँचकर उसे पाठक तक संप्रेषित कर सके।

स्पष्ट है कि आत्मकथा में आत्मनिष्ठता की प्रवृत्ति को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। यह संभव है कि आत्मकथाकार जब आत्म का अन्वेषण करता है तो इस अन्वेषण की प्रक्रिया में वह बहुत कम स्थानों पर तटस्थ हो। वह आत्म का अन्वेषण अधिकतर बाह्य रूप में ही करता है। आत्मकथाकार निर्विकृत होने का प्रयास करता है लेकिन वास्तविक उद्देश्य, प्रेरणा और मंतव्यों के विषय में अनभिज्ञ रह जाता है। यह भी संभव है कि लेखक जो कुछ छिपाता है वह बताये जाने वाले विषय जितना ही महत्वपूर्ण हो। अपने विषय में लिखने की प्रक्रिया में मनोविश्लेषणात्मक अन्वेषण दुरुह हो जाता है। क्योंकि लेखक स्वयं एक ओर अपराधी होता है तो दूसरी ओर निर्णायक भी वह स्वयं है। डी.एच. लारेन्स (D.H. Lawrence) लिखते हैं कि, 'व्यक्ति अपनी कुण्डाओं को अपनी पुस्तकों में बहा देता है और अपनी भावनाओं पर अधिकार भाव रखने के लिए उनको दोहराता है और प्रदर्शित करता रहता है।'³⁹

आत्मकथाकार आत्म अन्वेषण के दौरान दरअसल अनजाने ही आत्म को परिष्कृत और परिवर्धित करने लगता है फिर पर्यवेक्षण की प्रक्रिया बाधित होती है। ब्रायन फिने (Brian Finney) यही सवाल उठाते हैं— 'क्या ऐसा नहीं है कि वह अपने आत्म को उन्नत और संशोधित भी करना चाहता है? यदि ऐसा है तो फिर वह आत्म का पर्यवेक्षण करने की उम्मीद कैसे कर सकता है?'⁴⁰ आत्मकथा का अंतर्विरोध यहीं से प्रारम्भ होता है कि एक ओर लेखक स्वयं पर पूर्ण स्वामित्व रखता है और वह आत्म की रक्षा की भावना से मुक्त भी नहीं हो पाता। वह आत्म के अपराध को स्वीकार करने का प्रयास कुछ इस तरह करता है ताकि उसका वर्तमान कहीं से भी असुरक्षित न हो। इस तरह आत्मकथा का परिपेक्ष्य दोहरा हो जाता है। एक ओर आत्म का आत्मनिष्ठ प्रस्तुतीकरण है तो दूसरी ओर आत्म का वस्तुनिष्ठ या तटस्थ प्रस्तुतीकरण। आत्मपरकता का संबंध लेखक के स्वप्न, कल्पना, स्मृति और आत्मनिष्ठ सत्य से है जबकि वस्तुपरकता का संबंध जीवन सत्य और सामाजिक यथार्थ तथा उसकी व्याख्या से है। एक बेहतर आत्मकथा तभी संभव है जब इस आत्मनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता के बीच उच्च कोटि का संतुलन निभाया गया हो।

संदर्भ सूची

1. आत्मा का आईना— मैनेजर पाण्डेय, हंस, मार्च 2010, पृष्ठ 52
2. वही, पृष्ठ 52
3. सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे— मैनेजर पाण्डेय, हंस, जुलाई 2004, पृष्ठ 31
4. रूसों की आत्मकथा : ज्यां—जाक रूसो, भाग—1, अनुवाद : युगांक धीर, पृष्ठ 17, संवाद प्रकाशन, शास्त्री नगर, मेरठ, संस्करण 2009 ई.
5. सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा— मोहनदास गांधी (भूमिका से), पृष्ठ 7, अनुवादक— काशिनाथ त्रिवेदी, नवजीवन प्रकाशन, मंदिर, अहमदाबाद 24, संस्करण सितम्बर, 2005 ई.
6. वही, भूमिका, पृष्ठ 9
7. वही, भूमिका, पृष्ठ 8
8. दोहरा अभिशाप— कौसल्या बैसंत्री, पृष्ठ 104, परमेश्वरी

9. वही, पृष्ठ 7
10. सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे— मैनेजर पाण्डेय, हंस, जुलाई 2004, पृष्ठ 31
11. सार्वजनिक चौराहों पर व्यक्तिगत चेहरे— मैनेजर पाण्डेय, हंस, जुलाई 2004, पृष्ठ 31
12. Autobiography New Critical Idiom- Linda R. Anderson, page 3, Routledge, New York, 2001
13. Condition and Limit of Autobiography- George J.J. Gosford, Page 42, Printed University Press, New Jersey, U.S.A. 1980
14. Aspect of Biography- Andrey Maurois, page 52, Pen Book, 1981
15. The Inner Eye British Literary Autobiography of Twentieth Century- Brian Finney, Page 49, Feber & Feber, 1985
16. The Voice Within Reading and Writing Autobiography- Roger J. Porter, and H.R. Wolf, Page 5, Sheridan House, New York, Alfred A. Knopf Inc. 1973
17. The Summing UP- W. Somerset Maugham, page 10, Pen Book, London 1976
18. नारीवाद की हिन्दी आत्मकथा— अभय कुमार दूबे, पृष्ठ 33, तदभव अंक 16, जुलाई 2007
19. बसेरे से दूर (आत्मकथा) भाग 3— हरिवंश राय बच्चन, पृष्ठ 226, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, संस्करण 2010 ई.
20. वही, पृष्ठ 226
21. Sixteen Self Sketches- Bernard Shaw, page 42, Contable, 1949
22. Letters of Sigmund Freud- Edited Ernest Freud, page 391
23. The Voice within : Reading and Writing Autobiography- Rojer J. Porter, and H.R. Wolf, page 5, Sheridan House, New York, Alfred A. Knopf Inc. 1973
24. Inside Out : An Introduction of Autobiography- E. Stuart Bates, page 9, Sheridan House, New York, 1973
25. Dictionary of Literary Biography, Volume 299; Serge Doubrosky, page 70, Ben Gurion, University of Megey, Gale 2004
26. n'k}kj ls lksiku rd ¼vkRedFkk½ Hkkx 4& gfjoa'k jk; cPpu] Hkwfedk ls] jktiky .M IU] ubZ fnYyh] laLdj.k 2010
27. Jean – Jacques Rousseau- The Confessions, Trans- J.M. Cohen, page 262, Penguin Books, 1953
28. The Voice within : An Introduction of Autobiography- Rojer J. Porter and H.R. Wolf, page 5, Sheridan House, New York, Alfred A. Knopf Inc. 1973
29. Autobiography New Critical Idiom- Linda Anderson, page 7, Routledge, New York, 2001
30. The Grammar of Autobiography : A Developmental Account- Jean Quigley, page 107, Mahwah, NJ; Lawrence Erlbaum Associates Inc. 2000
31. As above, page 107
32. As above, page 107
33. The Grammar of Autobiography : A Developmental Account- Jean Quigley, page 52
34. Collected Essay – Jorge Arwel, Edited S. Arwel, page 156, London 1968
35. Aspect of Biography : Andre Maurois, Page 142, Pen Book, 1981
36. The Inner Eye British Literary Autobiography of the Twentieth Century- Brian finney, page 66, Feber & Feber 1985
37. esjh vkRedFkk % fo'odfo Lo- johUnz ukFk VSxksj]

- izLrkouk ls vuqokn vkpk;Z gtkjh izlkn f}osnh
38. Autobiography- G.K. Keesterton, page 35, Hacluson, 1960
 39. The Letters of D.H. Lawrence- Edited G.T. Joystuck, page 90, Cambridge University Press, 1981
 40. The Inner Eye British Literary Autobiography of the Twentieth Century- Brian Finney, page 162, Feber and Feber, 1985